1

भारतीय नृत्यकला का इतिहास

नृत्य अंगों, उपांगों और भावों की सौंदर्यमयी भाषा है । भारतीय नृत्य का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का इतिहास । प्रागैतिहासिक काल में खुदाई से प्राप्त मूर्तियाँ और मानव आकृतियाँ, नृत्य के उद्भव और विकास की ओर इंगित करती हैं । वैदिक काल से ही नृत्यकला आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ मनोरंजन का साधन भी रही है । नृत्य द्वारा नृत्यकार अपनी भावनाओं को प्रस्तुत करता है । मनुष्य के हृदय में जो भाव सोये हुए पड़े रहते हैं वे सब नृत्य के द्वारा शरीर की चेष्टाओं और गतियों से प्रदर्शित किए जाते हैं । वैदिक काल में नृत्य, सामाजिक जीवन का एक प्रमुख अंग था । धार्मिक यज्ञ से लेकर सामाजिक उत्सव सभी समारोह में नृत्य की परम्परा और प्रतिष्ठा थी । समाज में सभी लोग स्त्री पुरुष मिलकर नाचते थे । उत्तर वैदिक काल में नृत्य की व्यवसायिक परम्परा भी शुरू हो गई थी जो निरन्तर चलती ही गई । वैदिक काल में आर्यों के साथ-साथ रामायण और महाभारत काल का भी विकास शुरू हो गया । इस युग में समाज में उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक सभी लोग नृत्य में बढ़-चढ़ कर रुचि लेते गए । रामायण काल में जब राजा ही संगीत के मर्मज्ञ थे तो प्रजा क्यों न हो । इस युग में मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने के लिए जिन विद्या, कला की अनिवार्यता की शिक्षा दी जाती थी उसमें नृत्य और संगीत भी था । अयोध्यानगरी भी गणिकाओं और नाटक मंडलियों से घिरी रहती थी । शास्त्रीय नृत्यों के प्रति रामायण काल में जो रुझान बढ़ा था वह महाभारत काल में अधिक विकसित हो गया । युधिष्ठिर के राज्याभिषेक में हजारों नट-नटनियों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया था । इस प्रकार महाभारत काल में नृत्य के सर्वांगीण विकास के अधिक साक्ष्य मिले हैं ।

जैनधर्म और बौद्ध धर्म का काल निवृत्ति का काल था । अत: आरम्भ में जहाँ बौद्ध भिक्षुओं ने अनेक नर्तकियों-को भिक्षुणी बनाया था वहीं हमें देखने को यह मिलता है कि अपने-अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के प्रबल माध्यम के रूप में उन्हें संगीत, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं को भी अपनाना पड़ा था । राजकुमार सिद्धार्थ इन सभी कलाओं में निपुण थे । जैन व बौद्ध धर्म के अभ्युदय काल में ही भारत में मौर्य साम्राज्य का उत्थान व पतन हुआ । चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में ललित कलाओं के संरक्षण और प्रोत्साहन, कलाकारों के सार्वजनिक प्रदर्शन आदि से संबंधित चीजों का उल्लेख भी किया है । कौटिल्य ने ये भी कहा कि-राजा को

चाहिए कि वह गायन, वादन, नृत्य, नाटक, वीणा, वेणु, मृदंग आदि कलाओं में निपुण स्त्रीयों को राजदरबार में नियुक्त करें। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में भारतीय नृत्य और संगीत जनजीवन में पूरी तरह रच-बस गई। सम्राट कनिष्क के काल में संगीत का विकास द्रुत गति-से हुआ क्योंकि कनिष्क स्वयं महान संगीत प्रेमी थे और कलाकारों का काफी सम्मान करते थे । गुप्तवंश के सम्राट समुद्रगुप्त स्वयं एक संगीतज्ञ थे । उनके सिक्के में समुद्रगुप्त को वीणा बजाते दर्शाया गया है ।

मध्यकाल में विशेषकर मुगलकाल में भारत में विभिन्न नृत्य शैलियों का विकास हुआ । दक्षिण भारत में राजा कृष्णदेव राय के काल में संगीत की उन्नति पराकाष्ठा पर थी । विजय नगर राज्य में नृत्य का भी खूब प्रचार था। कृष्णदेव राय ने तो नर्तकियों के लिए एक गणिका नगर ही बसा दिया था । उन्हें मंदिरों में नाचने के लिए भूमि दान में दी जाती थी । ये सभी नर्तकियाँ देवदासी के रूप में मंदिरों में रहा करती थीं । उत्तर भारत में मुसलमानों के आगमन से, नृत्य कला में काफी बदलाव आया, साथ-साथ इसे राजकीय प्रश्रय भी दिया गया । नृत्य ईश्वर की आराधना न रहकर राजाओं और सभासदों के मनोरंजन का साधन बन गया । नए-नए प्रयोग किए गए और संगीत में काफी रचनाएँ भी हुई । शास्त्रीय नृत्य 'कथक' का तो स्वरूप बिल्कुल ही बदल गया । राजदरबारों में तो संगीतज्ञों को काफी सम्मान दिया जाने लगा । अकबर के दरबार में नौ रत्नों में संगीतज्ञ तानसेन भी एक रत्न थे। कथक नृत्य का वर्तमान स्वरूप मुगलकाल से काफी प्रभावित है । नृत्य में घरानों का विकास भी इसी काल में हुआ ।

अंग्रेजी सत्ता काल के भारतीय नृत्य की प्रवृत्तियों पर यदि हम सर्वांगीण रूप से दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि इस युग में बहुसंख्यक नर्तक, नर्तकियाँ व नाट्याचार्य मन्दिरों, राज दरबारों या रइसों के महफिलों से जुड़े थे और अपनी कला के सार्वजनिक प्रदर्शन में मग्न थे ।

1947 ई० में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से आजतक के काल में भारतीय नृत्यकला का प्रचार-प्रसार खूब हुआ है। अब इसे सिर्फ मनोरंजन का साधन मात्र नहीं समझा जाता है । अब हम सभी इसकी शास्त्रीयता को परखते हैं और लोगों को शिक्षित करने का भी काम कर रहे हैं । भारत के सभी नगरों में शिक्षण-केन्द्र स्थापित हो गए हैं। विद्यालयों महाविद्यालयों में विधिवत पाठ्यक्रम बनाकर इसकी शिक्षा दी जा रही है । बहुत सी संस्थाएँ नृत्य का व्यवसायिक प्रशिक्षण दे रही हैं । इस विषय में अनेक शोध-कार्य भी हो रहे हैं ।

सभी नृत्यशैलियों के प्रदर्शनात्मक स्वरूप में भी काफी अंतर आया है । नृत्य की संरचना, वेश-भूषा अलंकरण, रूप-सज्जा, ध्वनि प्रकाश सभी आधुनिक परिवेश के अनुसार स्थापित हैं । सन् 1954 ई० में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की स्थापना होने के बाद संगीतज्ञों को संगीत, नृत्य, नाट्य, आदि कलाओं के प्रचार-प्रसार में भी काफी बल मिला है । अन्त में, हम यह कह सकते हैं कि भारत में नृत्यकला का सतत्

विकास हुआ है और भविष्य में भी यह सतत् समुन्नति की ओर ही अग्रसित होता रहेगा ।

वर्तमान समय में भारतीय नृत्य को दो भागों में विभक्त किया गया है–

(1) शास्त्रीय नृत्य (2) लोक नृत्य । शास्त्रों के नियम पर आधारित नृत्य को ही शास्त्रीय नृत्य कहा जाता है । भारतवर्ष में शास्त्रीय नृत्य का वर्गीकरण इस प्रकार है –

(1) कथक नृत्य (2) भरतनाट्यम (3) ओडिसी (4)कथकली (5) मणिपुरी (6) कुच्चीपुड़ी (7) मोहिनी अट्टम । लोकनृत्य प्रादेशिक होते हैं ।

भरतनाट्यम (तमिलनाडु प्रदेश में प्रचलित)

भरतनाट्यम भारत के प्राचीन परम्परागत शास्त्रीय नृत्यों में प्रमुख नृत्य है। इस नृत्य शैली का पुराना नाम "दासी-अट्टम" है। इसका अर्थ है -देव दासियों द्वारा किया जाने वाला खेल। भरतनाट्यम के शिक्षक नत्तुवन कहे जाते हैं। जो अपनी शिष्याओं को नि:शुल्क रूप से शिक्षा देते थे। जिससे शिष्याएँ कला में पारंगत होकर धन अर्जित करती थीं और उस राशि का एक अंश अपने गुरु को आजीवन समर्पित करती रहती थी। बिना अपने गुरु के वे अपनी कला का प्रदर्शन नहीं करती थी।

भरतनाट्यम का प्रदर्शन क्रमश: छ: चरणों में पूर्ण होता है, जिनके नाम हैं–

(क) अलारिपु–इस शब्द का अर्थ "विकसित या प्रस्फुटित होना" है। पैरों को सटाकर "समपाद" स्थिति में रखकर नमस्कार की मुद्रा के पश्चात् ही नृत्त प्रारंभ होता है। इस प्रारंभिक कार्यक्रम में ग्रीवा, नेत्र और भौं के विभिन्न परिचालनों से, नृत्य किया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें शरीर के दोनों भागों का एक समान परिचालन होता है। अर्थात् जैसा दाहिना अंग का परिचालन होता है, ठीक उसी प्रकार की स्थितियाँ बायें अंग से प्रस्तुत की जाती है।

(ख) जतिस्वरम्–अलारिपु के पश्चात "जेथीस्वरम" या "यातिस्वरम" प्रस्तुत किया जाता है । इसमें ताल के विभिन्न करतब दिखाए जाते हैं। नर्तकी कमर पर हाथ रखकर पैरों के सौधे परिचालन से ताल दिखाती है उसके बाद वह जति का काम उठाती है । मृदंगवादक व नर्तकी क्रमश: "सोलुकूट" और "चोल्लु" का काम दिखाते हैं। मृदंग में बजने वाले बोल "चोल्लु" तथा पद संचालन से निकलने वाली घुंघरू की ध्वनि "सोल्लुक्कतु" कही जाती है।

(ग) शब्दम्–इसके द्वारा पहली बार साहित्य या सार्थक शब्दावली से दर्शकों को परिचित कराया जाता है और अभिनय की झलक प्रारंभ होती है। जेथीस्वरम की किसी तिरमान (अर्थात तिहाई) के बाद गीत प्रारंभ हो जाता है। इस गीत में अधिकतर ईश्वर की वंदना होती है। नर्तक यह भाव दिखाकर "नमस्कार" करता हुआ पीछे हटता जाता है।

(घ) वर्णम्–यह भरतनाट्यम का सबसे रोमांचक अंश होता है। इस कार्यक्रम में नृत्य व अभिनय दोनों ही पूर्ण रूप में देखने को मिलते हैं। "वर्ण" के पीछे चलने वाले गीत पल्लवी, अनुपल्लवी और चरणम् में विभक्त होते हैं। पल्लवी में एक संक्षिप्त सा प्रश्न किया जाता है, जैसे-"आज चांद क्यों नहीं

किसी वाक्य को अभिनय द्वारा प्रकट करके उसमें रस की उत्पत्ति होती है तो उसे नाट्य कहते है। ताल एवं लय के साथ हाथ-पैर चलाने को नृत्त कहते हैं। जब नाट्य और नृत्त दोनों मिल जाते हैं तो उसे नृत्य कहते हैं। जब कोई भी शब्द का अभिनय ताल एवं लय से किया जाए तो वह नृत्य कहलाता है। इस प्रकार कथक, नृत्त और नृत्य दोनों का मिला हुआ रूप है।

जिस नृत्य में वीर रस की प्रधानता होती है उसे तांडव नृत्य कहते हैं। एक कथा के अनुसार, त्रिपुरासुर राक्षस का वध करने के लिए भगवान शंकर ने जो क्रोध-भरा नृत्य किया उसे तांडव कहा जाता है। तांडव नृत्य पुरुषों के लिए अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि-उसमें ऐसे अंगहारों का प्रदर्शन होता है जो स्त्रियों के लिए उपयुक्त नहीं है। स्त्रियाँ शृंगार एवं कोमलता की प्रतीक होती है इसलिए उसके लिए लास्य नृत्य अधिक मनोरंजक और उपयुक्त होता है। वैसे आधुनिक काल में तांडव और लास्य पुरुष एवं स्त्री दोनों कलाकारों द्वारा की जाती है। शिव के गण तंडु ने ऋषियों को तांडव की शिक्षा दी तो पार्वती ने वाणासुर की पुत्री उषा को लास्य नृत्य सिखाया। लास्य के सम्पूर्ण अंगों के प्रदर्शन हेतु श्रीकृष्ण ने रास मंडल की स्थापना की। रास नृत्य को 'हल्लीसक' भी कहते है। इसमें गीत, नृत्त, नृत्य, अभिनय सभी तत्त्वों का सम्मिश्रण होता है।

समय के परिवर्त्तन के साथ-साथ कथक नृत्य के स्वरूप में भी परिवर्त्तन होते चले गए। मध्यकाल में मुसलमानी साम्राज्य स्थापित हुआ। ईश्वर-उपासना की भारतीय कला, अब राजाओं के मनोरंजन का साधन बनती चली गई। बड़े-बड़े नृत्याचार्यों को महल में नृत्य की शिक्षा देने की नौकरी दी गई। नर्त्तक और नर्त्तकियों को शराब का प्याला संतुलित रूप में लेकर राजा की आज्ञा का पालन करना होता था। इस स्थिति में नृत्य करने से पैरों के विविध चालों पर नियंत्रण होने लगा और पैरों की तैयारी बढ़ गई। नृत्य के पूर्व भगवान की स्तुति की जगह सलामी ने ले ली। इस प्रकार मुगलकाल में कथक नृत्य का स्वरूप काफी बदल गया। संगीत प्रेमी राजाओं ने नृत्यकारों को अपने दरबार में विशेष रूप से प्रश्रय दिया। भक्ति प्रधान गीतों का स्थान शृंगारिकता ने ले लिया। नृत्य और संगीत दोनों का रूप बदल गया। कथक मुगल नबाब वाजिदअली शाह संगीत प्रेमी शासक थे। उनके दरबार में नृत्य और संगीत को दूसरा जीवन प्राप्त हुआ। सम्राट स्वयं कृष्ण बनकर रास नृत्य करते थे।

कथक नृत्य अपने प्रस्तुतिकरण में जितना स्वतंत्र है उतना शायद कोई दूसरी नृत्य शैली नहीं। प्रत्येक कथक नर्त्तक का अपना अलग अंदाज होता है, वह उसी अंदाज में नृत्य प्रस्तुत करता है और अपनी क्षमता से कार्यक्रम का बखूबी संयोजन करता है। कथक नृत्य का दो पक्ष होता है --नृत्त और नृत्य। कथक में पहले थाट, आमद सलामी तोड़े, ततकार आदि की प्रस्तुति की जाती है तदुपरान्त भाव या अभिनय की प्रस्तुति होती है। घुँघुरू और पैरों की तैयारी का काम जितना कथक नृत्य में होता है उतना

विषयानुक्रम

क्र०	विषय	पृष्ठ
1.	भारतीय नृत्य कला का इतिहास	1-13
2.	पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान : **कथक**–लय, लय का प्रकार, परण, मात्रा, आवर्तन, हस्तक, तांडव, लास्य, मुद्रा **भरतनाट्यम**–अल्लारिपु, जतिस्वरम्, ध्वनि, कंपन, मुद्रा **ओडिसी**–त्रिपट, छेमटा, भाव, मुद्रा, अभिनय **मणिपुरी**–लास्य, हस्त, अभिनय, मुद्रा	14-25
3.	तालों का परिचय झपताल, एकताल, तीनताल	26-30
4.	बिहार के लोकनृत्यों का वर्णन	31-36
5.	पारंपरिक वेशभूषा एवं रूप-सज्जा	37-42
6.	पाश्चात्य नृत्य शैलियों का अध्ययन	43-45

विविध : (ज्ञान विस्तार हेतु)

1.	कथक नृत्य के घरानों का वर्णन	47-49
2.	भारतीय संगीत की लिपि (Notation)	50
3.	नृत्याचार्यों के चित्र	51-55
4.	नृत्य में प्रयोग होनेवाले वाद्ययंत्रों के नाम सचित्र	56-60
5.	मुद्रा के प्रकार सचित्र	61-73
6.	भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों एवं संबंधित नृत्यों के गुरु, नर्तक और नृत्यांगनाओं की सूची–	74-77

किसी और नृत्य शैलियों में नहीं होता है। तबला या पखावज से इस नृत्य में संगत की जाती है और तबले के बोल को घुँघरूओं के माध्यम से बखूबी निकाली जाती है। इस नृत्य में चक्कर का प्रयोग अद्वितीय है। भ्रमरी के प्रकार जैसे–चक्री, अर्द्धचक्री इत्यादि इस नृत्य की विशेषता है। ठुमरी या भजन पर नर्त्तक भाव-अभिव्यक्ति करते हैं।

कथक नृत्य की वेशभूषा पर मुगल काल का प्रभाव अधिक है। वर्त्तमान समय में नर्त्तक चूड़ीदार पैजामा कुरता या अंगरखा पहनते हैं। स्त्रियों की वेशभूषा लहंगा-दुपट्टा या मुगल अंदाज में कुरती और चुड़ीदार होती है। वेश सज्जा और आभूषण भी परिधान के अनुरूप ही होता है।

इस प्रकार कथक नृत्य सम्पूर्ण उत्तर भारत का प्रतिनिधि शास्त्रीय नृत्य है। भारतीय इतिहास में समय-समय पर राजनीतिक सामाजिक बदलाव के कारण सांस्कृतिक परिवेश में भी बदलाव हुआ और इसका असर नृत्यकला पर भी पड़ा। आधुनिक समय में कथक में भी नित्य नए प्रयोग हो रहे हैं। पं० बिरजू महाराज, सितारा देवी आदि प्रसिद्ध कथक नृत्यकार हैं। उमा शर्मा, शोभना नारायण, शर्मिला मुखर्जी, डॉ. नगेन्द्र 'मोहिनी', शिवजी मिश्र, नीलम चौधरी आदि वर्तमान के प्रसिद्ध कथक नृत्यकार हैं।

तुम्हें यह जानकर अचरज होगा कि पूर्वांचल में पुंग नामक वाद्ययंत्र को उत्तरांचल में ढोलक कहते हैं। फर्क इतना है कि पुंग मिट्टी का बना होता है तथा ढोलक लकड़ी का बना होता है।

रस-भाव के मानसिक अनुभूति को रस कहते हैं-रस 9 प्रकार के होते हैं। (1) श्रृंगार (2) वीर (3) करूण (4) रौद्र (5) हास्य (6) भयानक (7) विभत्स (8) अद्भुत (9) शांत

ओडिसी नृत्य का इतिहास

प्राचीन काल में उत्कल प्रदेश जिसे वर्तमान में उड़िसा कहते हैं । यहाँ जगन्नाथ मंदिर है जो विश्व-प्रसिद्ध है, देवदासी और महारी नृत्य का प्रचलन मंदिरों में था । प्रात: काल भगवान की आरती के समय भगवान के सोलहों सेवा, शृंगार के समय नृत्य की प्रस्तुति की जाती थी और आज तक भी की जाती है ।

ऐसा कहा जाता है कि चैतन्य महाप्रभु का आगमन जब उत्कल में हुआ, उनके सत्कार एवं स्वागत में गोटिपुआ नृत्य की प्रस्तुति की गई थी । गोटिपुआ का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है, गोटि - एक और पुआ - लड़का। यह नृत्य उस समय बहुत प्रचलित था, शरीर का विशेष रूप से संचालन इस नृत्य की विशेषता थी जो आधुनिक काल में भी है । ''गोटिपुआ' नृत्य की शुरुआत ''राय रामानंद देव'' ने की थी, राजा प्रताप रुद्र के कार्य काल में इस नृत्य की बहुत ख्याति हुई । इसका प्रचलन चरम सीमा पर हुआ। मंदिर में झूलन यात्रा, चन्दन यात्रा और रथ यात्रा इत्यादि में गोटिपुआ नृत्य की प्रस्तुति की जाती थी । देवदासी किसी भी बाह्य स्थानों पर नृत्य नहीं कर सकती थीं । वे केवल मंदिर प्रागंण में ही तृत्य कर सकती थी यह आदेश था ।

ओडिसी नृत्य का सबसे बड़ा प्रतिष्ठान उड़िसा में उत्कल संगीत महाविद्यालय है। आज ओडिसी नृत्य अपना नवीन रूप लेकर आया है भाव भंगिमा शरीर का परिचालन लगभग वैसा ही है सिर्फ 'गोटिपुआ' नहीं आज स्त्रियाँ ही अपने रूप में तथा पुरुष नर्तक अपने वास्तविक रूप में नृत्य करते हैं।

ओडिसी नृत्य की विशेषता है कि इसमें लास्य बहुत अधिक है, भाव बहुत है, त्रिभंग और चौक मुद्रा इसकी प्रमुखता है। शरीर को तीन स्थानों से मोड़ कर खड़े होते हैं–प्रथम–घुटने को थोड़ा झुकाकर

द्वितीय–कमर को बाईं ओर कर खड़े होते हैं।

तृतीय–गर्दन भी बाईं ओर झुकी होती है।

चौक में पैर फैला कर घुटने को थोड़ा मोड़ कर हाथ को 90° के कोण में फैला कर खड़े होते हैं। नर्तकी मंच पर एक बार नृत्य प्रारंभ करती है तो बीच में कहीं दम लेने की गुंजाइश नहीं होती। एक विभाग (आईटम) समाप्त कर के ही क्षणिक रुक सकती है। पूरे नृत्य में घुटना आधा मुड़ा होता है सीधे खड़े होकर नहीं बल्कि थोड़ा बैठ कर ही नृत्य किया जाता है। वेश भूषा–नृत्य का पोशाक है सम्बलपुरी साड़ी जिसे धोती की तरह बाँधी जाती है (वर्त्तमान में बना) बनाया पोशाक आता है।

जेवर–चाँदी का विशेष बनावट का जेवर पहना जाता है। माथे पर टीका तथा टायरा, कान में पूरा कान ढका और झुमका गले में सटा हार जिसे चिक भी कहते हैं। फिर एक लम्बा हार, बाजुबन्द हाथ में बाला, अँगूठी तथा कमरधनी जिसे 'बेगं पट्टिया' कहते हैं। इसकी बनावट बहुत विशेष रूप की होती है। यह करीब एक बित्ता चौड़ा होता है तथा लाल डोरी लगी होती है जिससे यह बाँधा जाता है। पाँव में (चौमुहाँ) घुँघरू बँधे होते हैं। बालों में जूड़ा बनाया जाता है जूड़े में शोले का फूल (शोला पानी में

पाया जाता है जिससे बड़ी सुंदर आकृति के फूल बनते हैं) का गजरा लगाया जाता है और गजरा के ऊपर लम्बाई में फूल लगाया जाता है, मुख की सुन्दरता में बिन्दी की महत्ता बहुत अधिक है, आँखों की सजावट भी सुंदर तरीके से की जाती है। इसी प्रकार पुरुष नर्तक एक सुन्दर धोती पहनते हैं। शरीर पर केवल एक अंगवस्त्रम जिसे अंगरखा भी कहते हैं रखते हैं, कमर पेटी लगाते हैं, गहना पहनते हैं, बाल में कुछ नहीं किया जाता, पाँव में घुँघरू पहनते हैं। ओडिसी नृत्य में वाद्य यंत्रों में पखावज, हारमोनियम, बाँसुरी, मंजीरा तथा वायलिन का उपयोग होता है।

प्रत्येक शास्त्रीयनृत्य में भाग या आइटम होते हैं उसी प्रकार ओडिसी के भी भाग हैं जो इस क्रम में होते हैं–

(1) मंगला चरण (2) बटु (स्थाई)

(3) पल्लवी (4) अभिनय

(5) मोक्ष

इस नृत्य शैली के प्रमुख गुरु एवं नृत्यकार हैं–पंकज चरण दास, केलूचरण महापात्र, देवप्रसाद दास, मायाधर राउत, संयुक्ता पाणिग्रही गोविन्द चंद्र पाल, सोनल मानसिंह, माधवी मुद्गल, कुमकुम महंती, मिनती मिश्रा, तमाल पात्रा, शेरोन लावेन, सविता मिश्रा, सोनाली महापात्र नन्दी इत्यादि।

भरत मुनी द्वारा रचित नाट्य शास्त्र नामक ग्रन्थ में शास्त्रीय नृत्यों का पूर्ण व्याकरण निहित है।

'गीत गोविन्द' गुरु जयदेव द्वारा रचित संस्कृत भाषा में एक दीर्घ काव्य है। इसमें श्रीकृष्ण का भाँति-भाँति से वर्णन है।

मणिपुरी नृत्य (मणिपुर)

मणिपुर की सम्पूर्ण धरती, मानो नृत्य करती सी लगती है। ऊंची-ऊंची पहाड़ियों से घिरा हुआ आंगन जैसा यह प्रदेश प्रकृति की रंगशाला का मंच ही लगता है। वहाँ के निवासियों के अनुसार भी, मणिपुर की स्थापना ही इसलिए हुई थी कि स्वर्ग के देवता वहाँ पर अपना नृत्य कर सकें। इस संबंध में एक विचित्र लोक कथा प्रचलित है कि एक बार महारास में कृष्ण के साथ गोपियाँ नृत्य कर रही थी। नटराज शिव ने उस नृत्य को देखने की अनुमति मांगी। तब कृष्ण ने केवल इतनी अनुमति दी कि वे रासलीला की ओर पीठ कर के खड़े हो सकते हैं और मात्र सुन सकते हैं। शिव ने वैसा ही किया। किन्तु महारास की नृत्यलीला, घुंघरू, पुंग और बांसुरी की सम्मिलित ध्वनियों का उन पर कुछ ऐसा जादू हुआ कि वे अपना वचन भूल गये। शिवजी ने हिमालय लौटकर तत्काल ही पार्वती के साथ रास रचाने का निश्चय किया और उसके लिए इसी मणिपुर का स्थान चुना। उसी क्षण उन्होंने 'पेंगा' और पेना आविष्कृत किया, जो इस नृत्य के साथ बजाए जाते हैं। शेषनाग की मणि से सारा प्रदेश आलोकित हो उठा, इसी कारण इसे मणिपुरी कहा जाने लगा।

मूल रूप से अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए ही मणिपुर निवासी आजतक नृत्य करते चले आ रहे हैं। उनका प्राचीनतम् नृत्य 'लाई-हरोबा' है, जो शिव पार्वती द्वारा सर्वप्रथम किया गया था। देवताओं की प्रसन्नता के लिए 'लाई-हरोबा' नृत्य वर्ष में एक बार नई फसल रोपने के समय अप्रैल-मई के आस-पास किया जाता है। वैसे यह एक चिरन्तम नृत्य है, जो अन्य अवसरों पर भी प्रदर्शित होता रहता है। लाई-हरोबा नृत्य वस्तुतः ग्राम देवता को समर्पित रहता है। ये देवता 'उमेड्-लाई' कहलाता है, जो मणिपुर के आदि देवताओं में से है।

पुजारी 'मैबा' और पुजारिणी मैबी कहलाती है। मणिपुरी नृत्य के विकास में इनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। 'लाई-हरोबा' बहुत सीमा तक एक धार्मिक क्रिया है जिसमे नृत्य-तत्वों की प्रधानता रहती है, जो दर्शकों को बांधे रखते हैं।

15वीं शताब्दी के आसपास मणिपुर क्षेत्र में वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ। उसी के साथ रास लीला तथा रास नृत्य ने नए रूपों में मणिपुर की धरती पर प्रवेश किया। आज भी धार्मिक पर्वों पर कीर्तन का विशेष आयोजन किया जाता है। इन कीर्तनों में मंजीरे, करताल और ढोल का प्रमुख रूप से उपयोग किया जाता है। अर्द्धवृत्ताकार मण्डलों में घूम-घूमकर वे नृत्य कीर्तन करते हैं। नर्तकों के चंदन-चर्चित माथे श्वेत पगड़ियों से सुशोभित रहते हैं। धोती, उतरीय और पगड़ी उनकी वेशभूषा है। अपने वाद्ययंत्रों को बजाते हुए ये कीर्तनकार जिस प्रकार नृत्य करते हैं वह एक अद्भुत रस की सृष्टि करता है। करताल चन्नन, पुड़चलन आदि इस नृत्य के प्रभावशाली अंश है। चलन-घटन के नाम से प्रसिद्ध ये नृत्य वैष्णव संस्कृति की अपूर्व देन है। इसी परंम्परा में एक विशेषकीर्तन नृत्य 'रासेश्वर' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह मणिपुर के राजपरिवारों में प्रचलित है। विशेष रूप से उस परिवार के सदस्यों के मृत्यु के अवसर पर यह कीर्तन होता है। इसमें विलाप और करुणा की भावना अपेक्षाकृत परिलक्षित होती है।

मणिपुर का सबसे प्रधान व लोकमान्य नृत्य 'रासलीला' है। यह रासलीला नृत्य, भारतीय 'ओपेरा' का अपूर्व उदाहरण है। इसमें संवाद अभिनय आदि है। किन्तु नृत्य की प्रमुखता रहती है, रासलीला होता है। कृष्ण का अभिनय 10-12 वर्ष का आयु तक कोई बालक ही कर सकता है। किन्तु राधा व उनकी सखियों का अभिनय प्रवीण नर्तकियां ही करती हैं। रासलीला चार प्रकार की होती है–

1. वसन्तरास 2. कुंज रास
3. महारास 4. नित्यरास

''वसंत' रास वैसाख मास में आयोजित होता है, जिसमे रूठी हुई राधा को कृष्ण द्वारा मनवाने की पूर्ण प्रयास है। कृष्ण राधा के सम्मुख आत्म समर्पण करते हैं, और राधा उन्हें क्षमाकर पुण: स्वीकार कर लेती है। कुंजरास आश्विनमास में होता है। यह राधा और कृष्ण के संयोग श्रृंगार का नृत्य है। इनमें उनका विरह नहीं है। कुंजों में राधा और कृष्ण का विभिन्न रूपों में विहार प्रदर्शित करना इस रासनृत्य की अपनी विशेषता है। 'महारास' कार्तिक मास में होता है। इस नृत्य में राधा और कृष्ण का विरह है। राधा को त्यागकर कृष्ण चले जाते हैं और अंत में पुण: कृष्ण की प्राप्ति हो जाती है। 'नित्य रास' किसी भी समय किया जा सकता है। यह राधा और कृष्ण के सतत् विरह और मिलन को प्रदर्शित करता है। आत्मा और परमात्मा का विछोह तथा आत्मा द्वारा उस परम तत्व को पाने का प्रयत्न एवं उसी में समर्पित हो जाने की भावना इन सभी लीलाओं की मूल प्रेरणा रही है।

रासलीला नृत्य की नर्तकों कि वेशभूषा बहुमूल्य है, जिसे देखकर मन ठगा सा रह जाता है। कहा जाता है कि मणिपुर के महाराज जयसिंह, जो मणिपुर रासलीला के जनक माने जाते हैं, इस वेशभूषा के भी आविष्कर्ता है। रासलीला की नर्तकियाँ राधा व गोपियाँ एक गोल घुमावदार लहंगा पहनती है। यह लहंगा प्राय: लाल या हरा रंग का होता है। नीचे दक्तीया बेंत की छड़िया लगाकर लहंगों को एक दिशा में ही घुमने के लिए सेट कर दिया जाता है। लहंगे के ऊपर एक छोटी-सी घघरीया रहती है। जो लहंगे को आधी दूर तक ढक लेती है। इन लहंगों और घघरियों में अबरक के छोटे-छोटे असंख्य टुकड़े लगे रहते हैं जो प्रकाश में जगमगाने लगते हैं। छोटी और कसी हुई चोली भी इसी प्रकार मचकीले रंगों और गोटे-जरी के काम से चमकते रहती है। इन सब पर एक महीन ओढ़नी लटकी रहती है, जो नर्तकी का मुख भी

ढके रखती है, किन्तु पारदर्शी होने के कारण उसके मुख का हर भाव दिखाई पड़ता है। विविध प्रकार के लेपों और चंदनों से उसका मुख रंगीन रहता है। केश सज्जा भी शृंगार आदि विभिन्न प्रकार के रसों में अलग-अलग प्रकार से बनाई जाती है। वसंत रास में जूड़ा पीछे की तरफ, महारास में सिर के मध्य में तथा कुंज रास में बाईं तरफ बनाई जाती है। कृष्ण का वेशभूषा मोर-मुकुट युक्त पिताम्बरधारी, मुरली, वैजयन्ती माल सहित ही दिखाई जाती है।

मणिपुर की धरती ही नृत्यमय है। वहां उपरोक्त नृत्यों के अतिरिक्त एक 'लघुरास' भी होता है। जिसमें गोपियाँ कृष्ण के साथ रास रचाकर अपना प्रेम निवेदन करती है। चैतन्य महाप्रभु की जीवन लीला पर आधारित 'गौरलीला' होती है। कार्तिक मास में गौष्ठ लीला बड़े धुम-धाम से मनायी जाती है। कालियादमन' की लीला भी प्रायः देखने को मिलती है। दशहरे के दिनों में नटों के अलावा वहां 'तबला-धांगबी' आदि बहुत से लोकनृत्य भी है। गुरुदेव रविन्द्र नाथ ठाकुर ने मणिपूर नृत्य को परिमार्जित कर उसे लोकप्रिय बनाने की दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन दिनों हमारी राष्ट्रीय सरकार द्वारा वहाँ मणिपुरी नृत्य अकादमी की भी स्थापना की गई है जहां इस नृत्य शैली की परम्परागत शिक्षा की समुचित व्यवस्था है।

❑

2

परिभाषा

■ कथक :

लय–समय की एक-सी चाल अथवा गति को लय कहते हैं । गायन, वादन एवं नृत्य की रफ्तार अथवा दो क्रियाओं के बीच के समान अन्तराल को लय कहते हैं । लय संगीत की आधारशिला है । इसके बिना संगीत का कोई अस्तित्व ही नहीं है ।

लय के प्रकार–शास्त्रों में लय के तीन भेद माने गए हैं । (1) विलम्बित लय (2) मध्य लय (3) द्रुत लय ।

विलम्बित लय–साधारण से धीमी गति को विलम्बित लय कहते हैं । संगीत की भाषा में इसे ठाह लय कहते हैं । कथक नृत्य में इस लय में आमद, सलामी इत्यादि नाचे जाते हैं ।

मध्य लय–लय न अधिक धीमी हो और न ही अधिक तेज हो तो उस लय को मध्य लय कहते हैं । इस लय में कथक नृत्य में तोड़े, टुकड़े परण इत्यादि नाचे जाते हैं।

द्रुत लय–मध्य लय से दुगनी तेज लय को द्रुत लय कहते हैं । इसकी रफ्तार तेज होती है । नृत्य में इस लय में पैरों की तैयारी ततकार, फरमाइशी टुकड़े इत्यादि नाचे जाते हैं ।

परण–नृत्य का ऐसा बोल जिसमें तबले या पखावज के जोरदार बोलों का समावेश होता है, परण कहलाता है । यह एक से अधिक आवृत्ति के बोल समूह का होता है।

मात्रा–संगीत में समय नापने के पैमाने या इकाई को मात्रा कहते हैं । मात्राओं के मेल से ताल का निर्माण होता है ।

आवर्त्तन–जब कोई ताल या बोल अपनी पहली मात्रा से प्रारम्भ होकर पूरी बजकर या नाचकर फिर से पहली मात्रा या सम पर आए तो उसे उस ताल या बोल की एक आवृत्ति या आवर्त्तन कहते हैं । दूसरे शब्दों में, किसी ताल की पूरी मात्रा या उसके बोल को एक आवृत्ति कहते हैं ।

मुद्रा–भावों को प्रकट करने के लिए शरीर के अंगों की विशिष्ट स्थिति, जो भावपरक हो, मुद्रा कहलाती है । इसे नृत्य की भाषा कहते हैं । नृत्य में हस्त-मुद्राओं का बड़ा ही महत्त्व है । हाथों के संकेत से नृत्यकार भावों की अभिव्यक्ति करता है । हाथ-संचालन की दृष्टि से मुद्रा दो प्रकार की होती है–(1) संयुक्त

मुद्रा (2) असंयुक्त मुद्रा । दोनों हाथों के संयोग से जो मुद्रा बनती है उसे संयुक्त मुद्रा कहते हैं जैसे–शंख, कपोत, इत्यादि । एक हाथ से जो मुद्रा या स्थिति बनती है उसे असंयुक्त मुद्रा कहते हैं । जैसे –पताका, त्रिपताका, अर्धचन्द्र, सूचीमुख इत्यादि ।

हस्तक–हाथों द्वारा बनाई गई स्थिति या मुद्रा को हस्तक कहते हैं । इसे हस्तमुद्रा भी कहा जाता है । कथक नृत्य में थाट की स्थिति में हस्तक का विशेष महत्त्व है ।

तांडव–रौद्र रस प्रधान नृत्य तांडव कहलाता है । अर्थात् जिस नृत्य में वीर एवं रौद्र रस का प्रदर्शन होता है वह तांडव नृत्य कहलाता है । एक पौराणिक कथा के अनुसार त्रिपुरासुर राक्षस का वध करने के लिए भगवान शंकर ने वीर और रौद्र रस प्रधान जो नृत्य किया उसे तांडव नृत्य कहते हैं । इस नृत्य के प्रवर्त्तक भगवान शंकर को माना गया है । यह नृत्य पुरुषों के लिए अधिक उपयुक्त होता है । अंगों की चपलता, वीर, क्रोध तथा रौद्र भावों को प्रदर्शित करने के लिए यह बहुत उपयुक्त नृत्य शैली है । तांडव नृत्य में विश्व की पाँच प्रक्रियाएँ–सृष्टि, स्थिति, तिरोभाव, आविर्भाव और संहार दिखाई जाती है । तांडव के मुख्य सात भेद हैं –

(1) संहार तांडव (2) त्रिपुर तांडव

(3) कालिका तांडव (4) संध्या तांडव

(5) गौरी तांडव (6) उमा तांडव

(7) आनन्द तांडव ।

लास्य–भावों की अभिव्यक्ति के लिए शृंगार रस प्रधान नृत्य लास्य नृत्य कहलाता है । एक कथा के अनुसार त्रिपुरासुर राक्षस का वध करने के पश्चात् उसके हर्ष में पार्वती ने जो शृंगार रस प्रधान नृत्य किया उसे लास्य नृत्य कहते हैं । स्त्री कोमलता और शृंगार की प्रतीक मानी जाती है । अतः लास्य नृत्य शृंगारिक और कोमलता प्रधान नृत्य है । वैसे तो पुरुष और स्त्री दोनों ही इस नृत्य को कर सकते हैं परन्तु यह स्त्रियों के लिए अधिक उपयुक्त है क्योंकि इसमें ऐसे अंगहारों का प्रदर्शन होता है जो स्त्रियों के लिए अधिक उपयुक्त है ।

इसके तीन प्रकार हैं –(1) विकट लास्य (2) विषम लास्य (3) लघु लास्य ।

प्रश्न

1. लय की परिभाषा लिखें ।
2. शास्त्रों में लय के कितने प्रकार माने गए हैं ?
3. मुद्रा की व्याख्या करते हुए इसके भेदों को लिखें ।
4. 'तांडव' एवं 'लास्य' का तुलनात्मक वर्णन करें ।
5. कथक में किस प्रकार के बोलों को 'परण' कहते हैं ?

भरतनाट्यम

अलारिपु–इस शब्द का अर्थ विकसित या प्रस्फूटित होना है । भरतनाट्यम का यह पहला आइटम होता है । पैरों को सटाकर समपाद की मुद्रा में नमस्कार करने के पश्चात् ही नृत्त प्रारंभ होता है । इस प्रारम्भिक कार्यक्रम में ग्रीवा, नेत्र और भौं के विभिन्न रूपों से परिचालन होता है जिसे रेचक कहते हैं । नर्तकी गति का संकेत करती है । अलारिपु की विशेषता यह है कि इसमें शरीर के दोनों भागों का संचालन एक समान होता है । अर्थात जैसा, दाहिना अंग करता है ठीक वैसी ही स्थितियाँ बायें अंग से प्रस्तुत की जाती है ।

जतिस्वरम–अलारिपु के पश्चात् जतिस्वरम् प्रस्तुत किया जाता है । इसमें ताल के विभिन्न करताल दिखाए जाते हैं । नर्तकी कमर पर हाथ रखकर पैरों के सीधे परिचालन से ताल दिखाती है । उसके बाद वह जाति का काम उठाती है । मृदंगमवादक व नर्तकी क्रमशः सोल्लुकट्टू और चोल्लु का काम दिखाते हैं । **मृदंग** से बजने वाले बोल चोल्लु कहलाते हैं तथा पद संचालन से निकलने वाली घुंघरू की ध्वनि सोलकट्टू कही जाती है ।

ध्वनि–जो कुछ हम सुनते हैं उसे ध्वनि कहते हैं । टक्कर से भी जो आवाज आती है या उत्पन्न होती है वह ध्वनि ही कहलाती है । कुछ ध्वनियाँ कर्णप्रिय होती है तथा कुछ कर्णकटु होती हैं । संगीत के मधुर ध्वनि को नाद कहते हैं ।

कम्पन–सुरपेटी और वीणा के खिंचे हुए तार को स्पर्श करने अथवा छेड़ने से तार के ऊपर–नीचे जाने को कम्पन कहते हैं । इससे ध्वनि उत्पन्न होती है । तार को आघात करने पर तार पहले ऊपर जाकर अपने स्थान पर आता है और फिर नीचे जाकर अपने स्थान पर आता है । इस प्रकार एक कम्पन पूरा होता है । जब तक तार पर छेड़ने का प्रभाव रहता है तब तक तार कम्पित होता रहता है और ध्वनि उत्पन्न होती रहती है । जैसे-जैसे तार पर छेड़ने का प्रभाव कम होता है, ध्वनि कम होती जाती है । एक सेकेण्ड में तार कितनी बार कम्पित होता है उसकी कम्पन संख्या उतनी ही मानी जाती है । वैज्ञानिकों ने कम्पन संख्या को नापने का प्रयत्न किया है और वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जैसे-जैसे हम स्वर से ऊपर बढ़ते जाते हैं स्वरों की कम्पन संख्या प्रति सेकेन्ड बढ़ती जाती हैं और जैसे-जैसे सा से नीचे की ओर चलते हैं स्वरों की कम्पन संख्या कम होती जाती है । कम्पन के मुख्य दो प्रकार हैं

(1) नियमित और अनियमित कम्पन

(2) स्थिर और अस्थिर कम्पन

प्रश्न

1. भरतनाट्यम का प्रथम कार्यक्रम को क्या कहते है, इसका वर्णन करें ।
2. जातिस्वरम् से क्या समझते हैं ? सोल्लुकट्टु तथा चोल्लु शब्द से क्या समझती हैं ?
3. ध्वनि एवं कम्पन से क्या समझती है ? ध्वनि एवं कम्पन का तुलनात्मक विवेचना करें ।
4. कम्पन के कितने प्रकार है, नाम लिखें ।

❑

पद्मश्री हरि उप्पल के विषय में बिहार के कला से जुड़े प्रत्येक बच्चों को जानना आवश्यक है। हरि उप्पल जी को बचपन से ही नृत्य सीखने की प्रबल इच्छा थी। इन्होंने अपने युवावस्था में मणिपुर जाकर मणिपुरी नृत्य की शिक्षा ली फिर ये कला मंडलम जाकर कथाकली नृत्य की विधिवत शिक्षा ली। तत्पश्चात बिहार की लड़कियों के लिए इन्होंने 50 के दशक में भारतीय नृत्य कला मन्दिर की स्थापना की जहाँ पर सभी शास्त्रीय नृत्यों की विधिवत शिक्षा दी जाती है। 2011 जनवरी में पद्मश्री हरि उप्पल जी का देहावसान हुआ।

विश्व नृत्य दिवस - 29 अप्रैल को पूरे विश्व में मनाया जाता है।

विश्व संगीत दिवस - 21 जून को पूरे विश्व में मनाया जाता है।

ओडिसी (पारिभाषिक शब्द)

ताल–त्रिपट् एवं खेमटा।

भाव–मुद्रा एवं अभिनय।

ताल–ताल एक ऐसा शब्द है जिसके बिना सृष्टि भी नहीं चल सकती है। बेताल होने पर ही पृथ्वी पर भी भूचाल आता है। सड़क पर भी दुर्घटनाएँ बेताल होते ही होती है।

यहाँ पर ओडिसी नृत्य की चर्चा हो रही है। इस नृत्य में दक्षिण भारतीय तालपद्धति का पालन होता है। इस नृत्य में विभिन्न प्रकारों के ताल का प्रयोग होता है, इसके लिए एक श्लोक है–

ध्रुवमठ रूपकस्य झम्पा त्रिपटएवच।
अटताल एकतालस्य सप्ततालः प्रकृतितः॥

1.	ध्रुवताल	–	मात्रा	14
2	मठताल	–	,,	10
3.	रूपक	–	,,	6
4.	झम्पा	–	,,	5
5.	अटताल	–	,,	12
6.	एकताल	–	,,	4
7.	त्रिपट	–	,,	7

इस पाठ में दो तालों का वर्णन किया गया है, त्रिपट एवं खेमटा। त्रिपट ताल को हिन्दुस्तानी संगीत में रूपक भी कहते हैं।

ताल		त्रिपट
मात्रा	–	7
जाति	–	तिस्र
भाग	–	3
अंग	–	। लघु । द्रुत । द्रुत
चिह्न	–	1 0 0
छंद	–	3 + 2 + 2 = 7
ताली	–	1 पर 4 पर 6 पर

उकुट (बोल) एक गुण– 1 2 3 4 5 6 7

धेई तथि दांक तथि दांक | तथि दाक

ताल-खेमटा– खेमटा ओडिसी नृत्य में बहुत प्रमुख ताल है। इसे झूला ताल भी कहते हैं। यह 6 मात्रा का होता है।

ताल खेमटा–	मात्रा	– 6
	जाति	– तिश्र
	भाग	– 2
	आं	– 2
	चिह्न	– | |
	छंद	– 3 + 3 = 6
	ताली	– 1 पर 4 पर

उकुट (बोल)– धा आ तिन | ताक धा तिन

अभिनय

ओडिसी नृत्य में अभिनय का महत्त्व बहुत अधिक है। ओडिसी नृत्य भावना और अभिनय प्रधान नृत्य है।

(ओडिसी नृत्य में भाव पूर्ण मुद्रा में एक नर्त्तकी)

मन की भावना को मुख और हस्त द्वारा दर्शको के समक्ष अभिव्यक्त करना ही अभिनय कहलाता है –

अभिनय चार प्रकार के हैं –

(1) आंगिक (2) वाचिक (3) आहार्य (4) सात्विक

आंगिक–अंग, प्रत्यंग तथा उपांग द्वारा जिस अभिनय की अभिव्यक्ति होती है या की जाती है उसे आंगिक कहते हैं, जैसे–अंग, सिर, कर, वक्ष, पार्श्व, कटिप्रदेश, पद तथा ग्रीवा ।

वाचिक–जो अभिनय वचन द्वारा किया जाता है । जैसे काव्य, नाटक, कथा आदि को वचन द्वारा प्रकाशित करने को वाचिक अभिनय कहते हैं ।

आहार्य–वस्त्र, अलंकार, और साज–सज्जा को आहार्य कहते हैं । विभिन्न रंगों के वस्त्र, परिधान एवं सुदंर गहनों के द्वारा विभूषित होकर जब कोई नर्त्तकी अभिनय करती है तो उसे आहार्य कहते हैं ।

सात्विक–अपने मन की भावना को भाव रस द्वारा अभिव्यक्त करने को सात्विक अभिनय कहा जाता है । यह मनोवृत्ति द्वारा स्वत: निर्गत होता है । सात्विक अभिनय के निम्नलिखित 8 गुण हैं–स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वैपश्य, वैवर्ण, अश्रु एवं प्रलय ।

भाव

भाव शब्द का बहुत ही वृहद अर्थ है परन्तु यहाँ पर हम शास्त्रीय नृत्य के अन्तर्गत भाव के विषय में चर्चा करेंगे। जिस प्रकार हिन्दी और अंग्रेजी या भाषा के व्याकरण में किसी प्रकार का बदलाव नहीं होता ठीक उसी प्रकार भाव हो या अभिनय ये सभी शास्त्रीय नृत्य में लगभग सामान्य ही होते हैं–

मनुष्य के हृदयगत चिंता या विचारों को जब हम चेहरे तथा अंगों के द्वारा प्रदर्शित करते हैं तो उसे भाव कहते हैं–ये 5 (पाँच) प्रकार के होते हैं–

(1) स्थायी भाव (2) विभाव

(3) अनुभाव (4) संचारी भाव

(5) व्याभिचारी

(1) **स्थाई भाव**–के कारण जिस आनंद की प्राप्ति होती है उसे स्वाद या रस कहा जाता है– यह 9 प्रकार के होते हैं –

(1) रति (2) हास (3) शोक (4) क्रोध (5) भय (6) विभत्स (7) विस्मय (8) उत्साह (9) शांत

विभाव–विभाव नृत्य नाट्य और काव्य की रचना में सहायता करते हैं । ये भी रस सृष्टि के कारण

है । इसके दो भाग हैं—

(1) आलम्बन (2) उद्दीपन ।

(3) **अनुभाव**—स्थाई भाव या संचारी भाव को प्रत्यंग द्वारा व्यक्त करना ही अनुभाव कहलाता है । जैसे—हाथ ऊपर उठाना, तिरछी नजर से देखना ।

(4) **संचारी भाव**—स्थायी भाव के साथ अन्य मनोविकार जैसे छोटे-छोटे भाव जो उत्पन्न होते हैं एवं पुनः विलीन हो जाते हैं संचारी भाव कहलाते हैं। यदि हम स्थाई भाव की तुलना समुद्र से करेंगे तो संचारी भाव की तुलना समुद्र के लहर से की जा सकती है ।

(5) व्याभिचारी—स्थायी भाव प्रकार के छोटे-छोटे भाव जो समान्य नहीं होते तो फिर अपवाद ही होते हैं, व्याभिचारी कहलाते हैं। इस प्रकार हमने भाव की परिभाषा पढ़ी ।

हस्त मुद्रा

अभिनय दर्पण के अनुसार हस्त मुद्रा तीन प्रकार के होते हैं–

(1) असंयुक्त हस्त मुद्रा – 28 प्रकार

(2) संयुक्त हस्त मुद्रा – 23 प्रकार

(3) नृत्य हस्त मुद्रा – 13 प्रकार

प्रतिदिन के जीवन में हम जितना भी कार्य करते हैं उसमें हाथ का प्रयोग तो अवश्य ही होता है परन्तु वह सभी एक मुद्रा होती है जिसका नाम भी है यह जान कर आपको आश्चर्य होगा। किन्तु शास्त्रीय नृत्य में हम एक हाथ से या दोनों हाथों से जो भी कार्य करते हैं उसका एक नाम है जिसे सचित्र दिया जा रहा है–

असंयुक्त हस्तमुद्रा प्रकार 28

(1) पताका	(2) त्रिपताका	(3) अर्धपताका
(4) कर्त्तरीमुख	(5) मयूर	(6) अर्धचन्द्र
(7) अराल	(8) शुकतुण्ड	(9) मुष्टी
(10) शिखर	(11) कपित्थ	(12) कटकामुख
(13) सूची	(14) चन्द्रकला	(15) पद्मकोश
(16) सर्पशीर्ष	(17) मृगशीर्ष	(18) सिंहमुख
(19) कांगुल	(20) अलपद्म	(21) चतुर

(22) भ्रमर (23) हस्तास्य (24) हंसपक्ष

(25) संदंश (26) मुकुल (27) ताम्रचूड़

(28) त्रिशूल

प्रश्न

1. ताल श्लोक स्मरण करके लिखें।
2. विभिन्न तालों की मात्रा के विषय में लिखें।
3. ताल त्रिपट और खेमटा का पूर्ण वर्णन करें।
4. अभिनय किसे कहते हैं तथा इसके प्रकार लिखें।
5. भाव की परिभाषा एवं प्रकार लिखें।
6. संयुक्त हस्त मुद्रा तथा असंयुक्त हस्त मुद्रा कण्ठस्थ करें तथा लिखें।

❑